खुली खिड़कियाँ
चौड़े रास्ते

● प्रकाशक
आर्यावर्त प्रकाशन गृह
सुजानगढ़ (राजस्थान)

● मूल्य—६)

● मुद्रक
मातादीन ठठारिया
नेशनल प्रिंट क्राफ्ट्स
६५ए, चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता-१२



'खुली खिडकियां
चौडे रास्ते' में
कुछ झांकती अभिव्यक्तियां
और भटकती
अनुभूतियां हैं।
इन्हें उपलब्धियां
माना जाय या नहीं
इसका निर्णय
मैं पाठकों पर ही
छोडता हूँ।
चैत्र पूर्णिमा
वि० सं० २०२४

कन्हैयालाल सेठिया

महान विचारक
संत
तुलसी
को

क्षितिज

दिशा | निर्देश

दिशा		निदश

दिशा निर्देश



खुली खिड़कियाँ
चौड़े रास्ते

कूद कर
अपने ही
एकान्त के तट से
तैरता हूँ विचारों का समुद्र ।
जानता हूँ
बने हुये हैं
सिद्धान्तों के अनेक
भव्य राजघाट
बँधी है
किनारों से
परोपजीवी पंडों की नावें
जो क्षण में
पहुँचा देती उस पार ।
पर
छीन लेती हैं
सोचने की क्रिया का आनन्द
विचार में आकंठ डूबने का सौभाग्य
इन में बैठकर
पार जाने वाले बेचारे
रह जाते हैं बन्द के बन्द ।

ये शानदार शो रूम वाले
प्रतिष्ठान
बेचते हैं केवल वर्तमान
दुर्लभ हैं इनकी लिस्ट में
तुम्हारे इष्ट के दर्शन ।
तुम टूटे पहिये वाले
वृषभ रथ के स्वामी
इनके स्टॉक में हैं अणुगामी
चन्द्रलोकी यानो के पार्ट्स
खोजो किसी कबाड़खाने में
भूतकाल के विलुप्त आर्ट्स
या फिर किसी अजायबघर में
क्रमिक विकास के सन्दर्भ स्वरूप
सुरक्षित है
तुम्हारा इच्छित !

दर्शित करवाता हूँ
स्वयं को
भीम भुजगों से
जिस से कि
मुक्त हो सकें ये
(भले ही क्षण भर के लिये ही)
अपने गरल से।
पहुँच सके मेरे अमृत का अंश
उनके वंश के गले में भी
बदल जाय शायद
उनकी भावी पीढ़ी
बन जाय वह
निर्विष अमृतमय।

जब दो क्वांरे रास्ते
करते हैं परस्पर आलिंगन
तो पैदा होते हैं चौराहे
इन चौराहों को कोई दोगला नहीं कहता।

जब दो उफनते दरिया
मिलते हैं डालकर गलबांही
तो जन्म लेते हैं द्वीप
इन द्वीपों को कोई वर्णसकर नहीं कहता।

जब दो भूखे शरीर
लांघते हैं समाज की रेखाएँ
तो पैदा होती है समस्याएँ
इन समस्याओं के शीर्षक है 'दोगला' 'वर्णसंकर'।

तन्वगी रेखाओं के
घुटने तोड़ कर, बाहें मरोड़ कर,
गर्दनें दबोच कर,
अपने अवचेतन मन की अतृप्तियों के
जिन बिम्बों को तुमने
इन्हें ग्रहण करवाया है,
यह सब इतना सहज है कि
बलात्कार को भी
कला कहने का मन होता है।

बारजे की रेलिंग में लगी
लोहे की कठोर जाली से
टकरा कर
हेमन्त की सन्दली धूप का कोमल हृदय
टुकड़े टुकड़े होकर
कमरे में बिछी कालीन पर
बिखर गया है।
गृहपति की पालतू बिल्ली
कलेजे के उन टुकड़ों से
अपने ठिठुरे कलेजे को सटाकर
गरमा रही है।

विस्तार एक बोध है
जो स्वयं में सिमटा हुआ है ।
बोध एक अवरोध है
जो चेतना से लिपटा हुआ है ।
सत्य एक क्षितिज है
जो छुआ नहीं जाता है ।
क्षितिज एक अपरिहज है
जो उठ नहीं पाता है ।
शब्द एक छल है
जो अभिव्यक्ति से किया जाता है ।
छल एक जंगल है
जिसमें व्यक्ति अपने को छिपाता है ।

दायित्वहीन आकाश पर
दिशाएं थोपने का परम्परागत हठ
दुर्भाग्य से भूगोल का एक पृष्ठ बन गया है ।
कहीं से भी नहीं उगने वाले
बेचारे सूरज को रोज जबर्दस्ती पूरब की
हथेली में उगाकर
बर्बर पश्चिम के पैरों तले रौंदने के लिये
डाल दिया जाता है ।
चौड़े प्रकाश को बेरहमी से
खिड़कियों और दरवाजों के तेज धार वाले
चाकुओं से
क्षत विक्षत कर ही घरों में आने दिया
जाता है ।
पर्दानशीन रात को बेपर्द करने के लिये
चकमक से अणुतक की हथफेरी को
बेहया इन्सान अपनी सभ्यता की कहानी
बताता है ।
इन सारे झुठलाये गये सत्यों के सन्दर्भ में
बिस्तुईया की कटी पंूछ सी मेरी अकेली
चेतना की
क्षण जीवी तड़पन भी मुझे भली लगती है ।

(६)

गहरे हरे
मौजाइक में जड़े
सीपों के चमकदार दाने जड़े
अधखिली बेले की कलियों से
दिखते हैं सुहाने बड़े
ग्वालों की राह से
पत्तों पर पड़े
सुनहली तितलियों से लगते हैं
हेमन्ती धूप के टुकड़े ।

धुर उठा
पक हटा
    संशय का
    भय का
क्षण आया
निर्णय का।
    घूमे फिरे पहिया
    रथ का
अन्यथा तू
छद्म वेशी शल्य
    मुझ में जो कर्ण
    उसका द्वेषण।

अभाव
चेतना तक पहुँचने का
एक मात्र द्वार है,
इसी के माध्यम से
दीखता है जो
वही आर पार है।
तुम्हारी आंखों में
इसके प्रति
जो तिरस्कार है,
अपने प्रति
जो अहकार है,
यह भी
इसे स्वीकार है।
क्यो कि यह
जानता है कि
बोध तक पहुँचने का
यह भी
एक प्रकार है।

यदि है
अपने से ही
अपने को
बडा देखने का
व्यामोह,
तो
उगते सूरज को
पीठ दो
ढलते सूरज को
पीठ दो।

उजाले के
अन्तिम क्षण तक
देखता रहा एकटक
तुम्हारी आँखों की मुट्ठी में बन्द
उस झुनझुनाते भेद के खुलने की राह
शायद जिसे प्राप्त कर
पहुँच जाता मंजिल पर
मेरा भटका हुआ प्रश्न !
पर अब
जब
अन्धेरे के हाथों से
ढाँप लिया है तुमने अपना मुंह
तो मेरे समक्ष रह गया है
यही एक विकल्प
जोड़ता चलूं उन सब टूटे
सन्दर्भों के टुकड़ों को
जो मेरे मन के आँगन में ही
इधर उधर छितरे हैं।

गलत फासलो पर टँके
बटनो से निरर्थक
अस्तित्व का क्या करें ?
इस उधेड़ बुन में फँसे
हम सब विवश हैं कि
एक दूसरे को अनुसरें
परम्परा के कचरे से
खोखलेपन को भरें
सीमाओं की कैंची से
असन्तोष को कतरें
अमरत्व की कल्पना करें
यथार्थ में मरें
और क्या करें ?

'चुप' के बियावान में
बैठ गई है आकर
आवाज की चिड़िया ।
थक गई
गीत की पाँखें
रूठ गई
सपन से आँखें
अब तो
उसके संगी हैं
बिना लहरों वाली
मौन की सदा नीरा नदी
धूप की धूल से
धरती की थाली माँजती
गूंगी सुबह
नखत शिशु की
अंगुली थाम कर आती
खामोश शाम
और और
एक अनकहा सत्य
जो शायद उसकी
सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

क्षितिजो के
वामन जादूगर
रोज उड़ाते हैं
सूरज चांद तारो के
बूधिये कबूतर
उजली काली पाँखों से
भर जाते हैं
धरती के आंगन घर
बुहारती हैं पलकें
कभी उठ कर
कभी बैठ कर।

चित्र में देखा तुम्हें
बांधे हुए रेखा तुम्हें
पर कहां ?
केवल यहां—
पहचान मेरी आंख की
फ्रेम में बन्दी विवश
कहती मुझी पर खा तरस
'मैं' को स्वय ही 'तुम' बना
सीखा कहां यह देखना ?

खरोंचें, दाग
और सलवटें
व्यक्तित्व के गवाह मात्र है
स्वय व्यक्तित्व नहीं !

रूप, रग
और गन्ध
अस्तित्व के सगी भर
स्वय अस्तित्व नहीं !

स्वर, शब्द
और अक्षर
कृतित्व के निरे सांचे है
स्वय कृतित्व नहीं !

(१६)

रास्तो के दांत नहीं
फिर भी वे एक दूसरे को काटते है ।
इसलिये नहीं कि
उनमें कोई झगडा है
अथवा एक कोई कमजोर
तो दूसरा कोई तगडा है
पर इसलिये कि
एक दूसरे को काटे बिना
टुकडों में बांटे बिना
ये उन उतावले पांवो को
मजिल पर नहीं पहुंचा पाते
जो थोडा चल कर ही थक जाते हैं
और भटक जाने की शिकायत करते हैं ।

तालाब सूख गया
पर लहरों की गठन
धूल पर अकड़ कर बैठी है,
तरलता के सपने को
अपनी जड़ता में जकड़ कर ऐंठी है,
इसी जिद की बीमारी को
आदमी अपनी भाषा में
संस्कृति कहता है।
वर्तमान में उसे जीना है
पर आदत के मारे
अतीत में रहता है।

(२१)

सूरज नगा है
बिजलियाँ घूँघट निकाले हैं
तना निर्लज्ज है
डालियाँ अवगुण्ठन डाले हैं
समुद्र आलसी है
नदियाँ रवानगी लिये हैं
सत्य बासी है
सपने ताजगी लिये हैं ।

ये हैं
किराये के मकान ।
इनकी हर कोठरी
हर दुकान
किसी न किसी
किरायेदार की ब्याहता है ।
यदि कोई अनब्याही है
तो उसकी नाक में
ताली की नथ पिन्हाई हुई है ।
इन मकानों की छतें ही
केवल द्रौपदियाँ हैं
जो समान रूप से
सब किरायेदारों की भोग्या हैं ।

(२३)

मेरे कमरे में ठहरे
गहरे अन्धेरे के पास
न तो कोई चांद है
और न कोई सितारा ।
मैं तो केवल रंग से ही
उसके रूप को पहचानता हूँ ।

अध सोये
अगारों के गाल पर
चिकोटी काट कर
झोंका एक नटखट
शिशिर समीरण का भागा।
पथ में लाठी टेक कर खड़े
वृद्ध नीम से टकरा कर
लडखडा गया अभागा,
गालियों-सी दस बीस पत्तियाँ
बरस गईं एक साथ बेचारे पर।

(२५)

कितने ही शब्द
गूँगों की तरह
अपना अभिप्राय नहीं बता पाते हैं।
आवतन ही ये
अधरों की गली से चल कर
कानों के कूचे तक आते हैं
और निरर्थक गुल-गपाड़ा मचाकर
नौ दो ग्यारह हो जाते हैं।
ऐसे गूंगे शब्दों का पीछा
वे ही शब्द करते हैं
जो सर्वथा बहरे हैं
जिन्हें अधरों की निरी हरकत ही
चौकन्ना कर देने के लिये काफी है।

मुझे दण्ड दो
मैंने बिना पूछे
तुम्हारे रूप को
अपने स्वप्न में उगाया है ।

मुझे प्रताड़ित करो
मैंने बिना कहे
तुम्हारे गीत को
अकेले में दुहराया है ।

मुझे धन्यवाद दो
मैंने मुझ से भी बड़े
किसी अपराधी के लिये
तुम्हारी क्षमा को बचाया है ।

समूचे प्रेम पत्र की अपेक्षा
एक फटी हुई पंक्ति
अधिक अर्थ पूर्ण है ।

सपूर्ण चित्र की अपेक्षा
एक अनखिची रेखा
अधिक कला पूर्ण है ।

पूरे स्वप्न की अपेक्षा
एक खण्डित सत्य
अधिक तथ्य पूर्ण है ।

(२८)

शेष हुआ समारोह
अवरोह पर पहुँच गया आरोह।
क्षण भर पहले
दर्शक थे जो
अब बने भीड़,
मंडप के द्वार का
रुँध गया गला
जीवन में उतरेगी
कब मंच की कला?

लो मैं स्वयं को नकारता हूँ।
आजतक व्यवहार की तश्तरी में रख
मैंने जो दिये थे तुम्हें स्वीकृति के बीड़े
वे तो केवल तुम्हारे नकार को
झुठलाने भर के लिये थे।

यदि तुम उन्हें
अपने व्यक्तित्व की उपलब्धि मानते हो
तो मैं यही कहूँगा कि मुझे
अपना दर्पण समझने की भूल मत करो।

लो मैं स्वयं को स्वीकारता हूँ।
आजतक यथार्थ के पेपरवेट के तले दबा
मैंने जो रखे थे तुम्हारे जीवन के उड़ते पृष्ठ
वह तो केवल तुम्हारे बिखराव को
समेटने भर के लिये था।

यदि तुम इसे
अपने कृतित्व की महत्ता समझते हो
तो मैं यही कहूँगा कि मुझे
अपना विज्ञापन समझने की भूल मत करो।

शरद की ठिठुरती सुबह को
पहना दिया सूरज ने
धूप का स्वेटर ।
ममता भरी सुबह ने
धरती के नंग धड़ंग बच्चों को
समेट लिया
अपने भीतर ।

जूड़े में खोंसा फूल
अनजाने ही निकल
गिर गया प्राङ्गण में
खुली नहीं खामोशी की आंख,

शिशु हथेली धरी अठन्नी
अचानक ही फिसल
गिर गई फर्श पर
चीखे बिना नहीं रह सका वातावरण !

कल एक और बीमार चाँद
अन्धेरे के एंजिन के तले दब कर
मर गया
दुर्घटना थी अमावस यह कर
रपट नहीं लिखी गई ।

मलयानिल की
पच पुष्प जड़ी छड़ी
घुमाते भाते
गुरु वसन्त को देख
लिखने लगे
आम्र नीम शिशु
पल्लव की पाटी पर
मंजरियों के अक्षर ।

दुहराता है कोकिल
'क का कि की' ।

(३४)

तुमने चुने
खिले मन से
अब खिले फूल,
सहमी शाखाएँ हिले मूल !
या ही भविष्य को नोचेगा
निर्द्वंद्व पिपासी वर्तमान
तो होगा भी क्या
शिशु विश्वास का नव विहान ?

जब भी
टूटेगी बंधी दीठ
तो दीखेगा वह
जो था अदीठ
जिसको ये
अब तक दिये पीठ
शायद हो सबका
वही ईठ ।

पहुँच चुका हूँ
अनेक बार
निष्कर्षों तक
उधार उधार
व्यवहार की परतें ।
देख चुका हूँ
यथार्थ का चेचक रू चेहरा
फिर भी
तुम्हारे शयनागार में लगे
आदमक़द आईने में
निहार अपना मुखौटा
उठा लेता हूँ
अनायास ही शतदन्ती कंघी
और केश संवारने के बहाने
ताकता रहता हूँ उसको
जो मैं नहीं हूँ ।

तुम्हारा विश्वास
मेरा धर्म बन गया
क्योंकि मैं विश्वासहीन था ।

तुम्हारा विराम
मेरा तीर्थ बन गया
क्योंकि मैं लक्ष्यहीन था ।

तुम मेरी
इस विडम्बना को समझते हो
यही तुम्हारा ईश्वरत्व है ।

टाइपिस्ट चाँद
दिवस-कागज के नीचे
रात का कार्बन-पेपर धर
समय-टाइप के की-बोर्ड पर
अंकित नखत-अक्षरों पर
किरण-अंगुलियाँ चला
सूरज के लिये आमन्त्रण-पत्र टाइप कर चुका है,
क्लर्क आकाश ने उसे
ऊषा के गुलाबी लिफाफे में बन्द कर
दिशा चपरासिन को दे दिया है।

(३६)

परिधि ने तोडा मुझे ।
जोडा मुझे इति के अचिन्हे बोध से ।
बाँधा कठिन अवरोध से
या कि मृदु अनुरोध से
परिधि ने मोडा मुझे ।
छोडा मुझे अन्धे अहम् के कूप में ।
बाँधा मुझे अनुरूप में
आकार में फिर रूप में
अब परिधि को मैं तोडता ।
निज को अखिल से जोडता ।
मेरा तिरोहित 'तू' हुआ
फिर पूण ने मुझ को छुआ ।

(४०)

एक उत्तेजना के बिना
स्वयं के अस्तित्व की प्रतीति
कितनी सन्देह पूर्ण है!

एक समवेदना के बिना
अन्य की उपस्थिति
कितनी क्रूरतापूर्ण है!!

एक लक्ष्य के बिना
भीड़ का नेतृत्व
कितना मूर्खतापूर्ण है!!!

चेहरों पर उगे
अजनबीपन को छीलते छीलते
बेचारी आँखों का पैनापन कम हो गया।
अब तो हर एक परिचय
अपरिचय सा लगता है
आँखें क्या हुईं बस
एक वहम हो गया ?

आओ
मुट्ठियाँ भींच कर कसें
अपनी ढीली वाली नसें
और फिर तलाशें
अपने उन प्रयासों को
जो कल धूल में मिल गये थे।
शायद उनमें से किसी ने आज
जमाली हो जड़ें
उस बंजर धरती पर
जो नम हो गई थी
हमारे पवित्र पसीने की हार्दिकता से।

(४३)

चेहरो के फ्रेम में
काल्पनिक परेशानियों को
नंगी भौंडी तस्वीरें मँढकर
सहानुभूति की सयानी गाहकिन को
ठगने का प्रयत्न निरर्थक है।
वह जानती है कि
वास्तविक समस्यायें
कलात्मक अभिव्यक्ति लिये होती हैं।
उन्हें खरीदने का अर्थ
अपने द्वन्द्व को बेच देना है।

(४४)

रगीन ऐनक की कूची से
पोतता हूँ वातावरण की सादी दीवार ।
घड़ी के आरे से काटता हूँ
हर क्षण को सुविधा के अनुसार ।
सिगरेट के धुएँ से
उगाता हूँ गजे आकाश के सिर पर बाल ।
खुरदरे सवालों को झुठलाता हूँ
तहाकर अपना रेशमी रुमाल ।

(४५)

नौजवान तालाब को
न तो मोतियाबिंद ही हुआ है
न रतौंधी
यह तो कीचड़ की क्वांरी कन्या काई का
मेंहदी रंजित हाथ चेहरे पर धरे
सुख से सोया
प्रणय के मीठे सपनों में खोया है।
सतह पर तैरती इक्की-दुक्की कमलिनियाँ
कोमलांगी काई की अंगुलियों में पहनी
पुखराज और मानिक की अंगूठियाँ हैं।

शून्य के लिये
मैं ही वातावरण हूँ ।
शून्य मुझे ही ग्रहण करता है
और मुझ से ही अपने को भरता है
मेरी खिडकी के सामने शून्य
खिडकीनुमा बन कर आता है ।
मेरे आगन में शून्य
चौकोर बन कर उतरता है ।
शून्य के लिये मैं ही अनुकरण हूँ,
शून्य मुझ से ही प्रभावित है,
शून्य मुझ में ही समाहित है,
शून्य के लिये
मैं ही शरण हूँ
मैं ही आवरण हूँ ।

घटो बैठ कर सोचते रहे
समस्याओं के बारे में
जब उठ कर चले
तो पीछे छोड़ गये
अवैध सन्तान सा असहाय धुआँ।
स्मृतियों से छितरे हुए
मूंगफली के छिलके
खण्डिता नायिका सी
भू लुण्ठित बीड़ियां।

मैं अन्धा वर्तमान।
अब जब कि
भर गया है कमरे में अन्धेरा
दियासलाई टटोलता
ताक तलाशता
दराज खोलता
बिखर गई ठोकर से स्याही
टूट गया गिलास
गिर गई शीशी
सचमुच अपनी इस आदत से
बेहद परेशान।
क्या करूँ
मैं अन्धा वर्तमान?

(४६)

छौंक की मीठी महक
रसोईघर से
बरामदे में आ गई ।
मेरा ध्यान अखबार से
रसोईघर में चला गया ।
हम अनजाने ही एक दूसरे के
पूरक बन गये ।

दरवाजे और खिड़कियाँ
बिलकुल लड़के और लड़कियाँ !
ये दरवाजे
हर आने जाने वाले से
खुले दिल से मिलते हैं,
जब कभी लेते हैं झपकियाँ
तो जाग जाते है बिना नाराज हुए
पीठ पर खा कर किसी की थपकियाँ ।
ये खिड़कियाँ
खेलती रहती हैं आंख मिचौनी
जैसे हो शरमीली लड़कियाँ,
जब कभी तेज हवा देती है इन्हें झिड़कियाँ
तो ये नाजुक मिजाज छोकरियाँ
लेने लगती हैं हिचकियाँ ।
दरवाजे और खिड़कियाँ
बिलकुल लड़के और लड़कियाँ !

दुबली पतली
आवारा गलियाँ ।
बेचारे गरीब अनपढ़ बाप-गाँव की लड़कियाँ,
नहीं बँधी हैं चमकीले तारकोल से इनकी चोटियाँ
नहीं पहने हुए हैं ये
फुटपाथों की सलवारें ।
नंग धड़ंग, मिट्टी में सनी
बेतरतीब बालों वाली गँवई छोरियाँ,
नहीं किया है किसी ने इनका सुन्दर नामकरण
पुकारते हैं लोग इन्हें जिस किस बेढंगे नाम से
'गली भूतों वाली' 'गली पीपल वाली'
पर ये हैं कि हँस कर टाल देती हैं
बिना चढ़ाये त्यौरियाँ ।
अल्हड़, नादान, गवई छोरियाँ !

जिस क्षण हुआ जन्म
उसी क्षण बिछुड़ा जनक से ।
बिना चरण लांघे
प्राचीरें परकोटे
कितने ही खाई खन्दक
छोटे मोटे
रुका वहीं
जहां कहीं
मिल गई चेतना उसको
बोला—' मैं घण्टा रव
करता हूँ
स्वत्व समर्पित तुमको ।"

कल तक
डराता रहा जो
दूसरों को
वही मेरा पालतू डर
आज अचानक ही
हो गया हावी मुझ पर
और बोला गुर्राकर
यदि चाहते हो खैर
तो लौटाओ
देर किये बगैर
अपनी आँखों के द्वार से
वे सब आँसू
अपने ओठों के रास्ते से
वे सब मिन्नतें
जो तुमने छीन ली थीं
उन असहाय भयभीत लोगों से
जो खो चुके थे अपना आत्म-विश्वास
तुम्हें एक दैविक विपत्ति समझकर।

निकल जाता यों ही
पर कुछ
परिचित शब्दो ने
पकड लिया,
पछताता हूँ अब कि
सँपेरे शब्दो से
परिचय ही क्यों किया ?

(५५)

मत छिड़को
मुट्ठी भरे बीजों को
एक ही जगह,
शहर उग आयेगा
एक दूसरे के व्यक्तित्व को
भीड़ खा जायेगी ।

दूर्वा मंडित
प्रान्तर में
खरगोश की तरह
पिछले पैरों से
छलांगता हुआ
चंचल निर्झर।

बालुका वेष्टित
निविड़ मरु में
कछुए की तरह
रेंगता हुआ
आलसी पोखर।

स्थितियाँ ही
अभिव्यक्तियाँ हैं!
अभिव्यक्तियाँ ही
आकृतियाँ हैं!!

मंजिलें दरवाजों पर ही
तुड़वा देती हैं
रास्तों के पाँव ।
फल मूलसे मिलने को
झटक देते हैं
शाखाओं की बाँह ।
दाने परिणति पर पहुँच
कटवा देते हैं
फसलों के कंठ ।
शिखाएँ दीप्ति की लिप्सा में
बना देती हैं
समिधाओं को राख ।
सन्दर्भ के प्रति
उपलब्धियों के निर्ममत्व ने ही
रचा है
काल्पनिक मौलिकता का व्यक्तिवादी इतिहास
जिसके रंगमंचीय पृष्ठों पर
कृतघ्नता, पहनकर क्षमता का भौंडा मुखौटा
उड़ाती है उन आकंठ दबी नींवों की हँसी
जिनके चौड़े कंधों पर खड़ा होकर
सृजन का जिज्ञासाशील शिशु
मापता है
शून्य का अछूता विस्तार,
करता है
विराट का आकलन ।

दिन दोपहर में भी
नंगी पड़ी जवान ऋतुमती
(पान के पीक से भरी)
सड़कों के जिस्म से
चिपक कर खड़े हैं
कतार की कतार
निर्लज सफेदपोश मकान ।
हर कमरे में है
बलात्कार की बेइन्तहा बदबू
हर चौराहे के मुंह से
निकलती है गलियाँ—
गालियों की तरह गन्दी ।
नालियो के रुद्ध कंठ में सड़ता है
सिफलिस, हैजा, यक्ष्मा के
मरीजों का मवाद, मल और बलगम ।
शहर के मुखौटे वाले
इस नरक के चारो ओर
चक्कर काटती है
एक भारी भीड
जो छटपटाती है
मकड़ी के द्वारहीन रेशमी तम्बू में
फँसी हुई असहाय मक्खी की तरह
पर छूटने नहीं देता है जिसे
भूख को रेहन रखा हुआ पेट,
व्यसन को उधार दिये गये पाँव ।

बिन्दु
जनमता है
लेकर वृत्त का कुण्डल
वह कर्ण नहीं है
फिर भी अतृप्ति की कुन्ती
मांगती है अस्तित्व का
संरक्षण।

लहर
उमगती है
लेकर गति का पाथेय
वह गान्धारी नहीं है
फिर भी किनारे का धृतराष्ट्र
मांगता है अहर्निश
समर्पण।

समुद्र
उफनता है
खींचकर मर्यादा की रेखा
वह पुरुषोत्तम नहीं है
फिर भी धरती की द्रुपदा
मुख में तृण दबा
मांगती है
शरण।

रात की आँख के तारे की तरह
नहीं लग पाती है
शहर की आँख ।
एक बन्द भी हुई
तो दूसरी खुली
सच और सपने
कहते हैं एक दूसरे को
बुरी भली ।
सिर पर सवार
गति का पागलपन
कभी सोने का हुआ भी मन
तो तैयार मिले
खटमल, मच्छर के दशन ।
हर महल्ले में
बेचते हैं पानवाले भी
नींद लाने वाली गोलियाँ
फिर भी स्नायविक तनाव से
उत्पीडित शहर
करता है रोज आत्म हत्या
अपने ही किसी निरीह वाशिन्दे को
बना कर माध्यम ।

स्त्री पुरुष की तरह
शब्द भी एकान्त में नगे होते हैं,
कुछ शब्द निहायत शरीफ
कुछ लुच्चे लफगे होते हैं !

कुछ दुबले पतले
कुछ शब्द भले चगे होते हैं,
कुछ बड़े सलीके वाले
कुछ बदमिजाज बेढगे होते हैं !

आदमी की तरह
शब्द भी पूरे सामाजिक होते हैं,
इनके भी परिवार हैं
बाल बच्चे हैं नाती पोते हैं !

शब्द भी बँधे हैं
आदमी की तरह रीति से, रिवाज से
इन्हें भी वास्ता रहता है
कल से, आज से, लिहाज से !

इनमें भी द्विज, शूद्र,
कुम्हार, खाती हैं,
किसी भी रचना में देखिये
एक शब्द दुलहा है
बाकी सब बराती हैं !

बेचारे मकान
अपने ही अहातो में बन्द हैं।
समझने को तो ये समझते हैं कि
हम इन के सरक्षण में
सुरक्षित और निर्द्वंद हैं,
पर सही बात यह है कि
ये अहाते
सीमेंट और ईंट के बोदे छन्द हैं,
जो मकानो में बसी अनुभूति को
अपने सकीर्ण माध्यम से गुजरे बिना
अभिव्यक्त ही नहीं होने देते,
ये बेचारी सकपकाती हाँफती सडकें
इनकी बेरहम गिरफ्त में
इस बुरी तरह से जकडी हुई हैं कि
जैसे कोई अपने झुण्ड से बिछुडी नील गाय
निर्दयी शिकारी कुत्तो के व्यूह में फँस गई।
जब जब भी किसी मोड पर मुड कर
कोई सडक ने इन से पिंड छुडाना चाहा है
तब तब ही
ये उस के साथ ही साथ लगे
इस कदर तेजी से मुड गये हैं कि
आखिर में थक कर
गरीब सडक को ही
किसी चौराहे में घुस कर
अपनी जान बचानी पडी है।

क्रिया की नहीं
प्रतिक्रिया की परिणति है
यह जीवन !
इसी विवशता से बँधा
बटोरता है अपने चारों ओर
एक ऐसा ऐंद्रजालिक दर्शन
जिस की हर कल्पित पूर्णता के समक्ष
खड़ा है कथा सिद्ध बगुले की तरह
एक टाँग से प्रश्न वाचक चिन्ह
जो खींच तो लाता है सतह पर
मन-सरोवर में तैरती
जिज्ञासा की चटुल मीनों को
पर उसी पल उन्हें लील कर
उग जाता है अपने रूप में एक उत्तर।

बाहर की बेहद गरमी से अप
थरमस के अपने नन्हे से वाता
घर में, लाल, पीली और सफेद
नायलोनी साड़ियाँ पहने
एक दूसरी से सट कर
बड़े मजे से बैठी हैं
कुछ नाजुक मिजाज आइस कैंडिय
प्यास के मारे सूखते गले
मुरझाये ओंठ
पथराये नयन
इनके हिम कठोर हृदय को
नहीं पिघला सकते
केवल चमकीले सिक्के की खनक ही
इन्हें इनके अन्तःपुर से
बाहर ला सकती है,
इन का गदराया यौवन
उन गाँठ के पूरे स्वाद लोलुपों को थाती
जिनकी जीभ की चेतना को
तेज शराब और चटपटे मसाले
बहुत पहले ही नपुंसक बना चुके हैं।

(६५)

सिर के खेत में
पैदा होती है रास्तों की फसल
पांव तो काटते भर हैं ।

मन के करघे पर
बुनी जाती है मंजिल की मलमल
नयन तो तहाते भर हैं ।

उम्र की तराई में
फैला हुआ है मजबूरियों का जंगल
गीत तो गुंजाते भर हैं ।

कहाँ रोपूं ? मन के उखड़े बिरवे को
जिस से यह लगे
खिले, फूले, फले,
कब से हाथ में थामे
बैठा हूँ कलम ।
बस चारों ओर
ऊसर ही ऊसर
जड़ें काटने वाले
चूहों के विवर
या दो चार
भटकते डगर ।
सोचता हूँ
लौट चलूं घर
वहीं रोपूं
गमले में मिट्टी भर
इस उखड़े मन को ।

फँस कर
झंझा के झाँसे में
पथ हुये कुपथ।
गति ने जो सौंपी पूँजी
पद चिन्हों की
उसे उड़ा
तोड़ी कुल की शपथ।
अब क्या होंगे
माध्यम मंजिल के
जो भूले
अपना ही इति-अथ।
पथ हुये कुपथ।

रास्तो की रस्सियों से
(पडी हुई है जिनमें चौराहो की गांठें)
बांध दिये गये हैं कस कर
बिखरे हुये घर-गांव,
कस्बे और नगर
इन छोटी बडी गठरियो को ही
अपना असबाब समझ
मन का नादान मुसाफिर
लाता है इन्हें अपने पास
पांव के मजदूर के सिर पर रख !

कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं
जिसकी उजली कमीज पर
आलोचना के छींटे पड़े नहीं !
कोई ऐसी दृष्टि नहीं
जिसकी नयन क्यारी में
सत्य के साथ सपने उगे नहीं !
कोई ऐसा ज्ञान नहीं
जिसने कुँआरेपन में
किसी जड़ता से अवैध सम्बन्ध किया नहीं !
कोई ऐसा अर्थ नहीं
जिसे अधरों के गाहक ने
शब्दों की रेजगारी से क्रय किया नहीं !
केवल मानस की हंसिनी श्रद्धा ही
दूध से धुली है,
केवल क्रिया की विवशता ही
फल की अनुरूपता से बंधी है,
केवल साँसों की बन्दिनी देह ही
मरण के धृतराष्ट्र की गान्धारी है,
केवल हृदय की संगिनी अनुभूति ही
अमोल लुटी है।

हम तो अर्द्ध-विराम है,
पूर्ण विराम होने का झूठा दावा क्यों करें ?
हमारे आगे भी कुछ लिखा जायेगा
इस संभावना से तनिक भी क्यों डरें ?
अधिक से अधिक हम
प्रश्नवाचक चिह्न बननें की सोच सकते हैं
जिन्हें देख जिज्ञासाएँ जागती हैं
और विचार उभरते है !
हम तो केवल अल्प विराम भर हैं,
हमें अपनी पूर्णता का कोई वहम नहीं।
हम यह डींग क्यों हांकें
हम ही अन्तिम है,
हम ही सही।

अभागे इन्सान की मुट्ठियों में
जबरन उगा दिया गया है
बन्दूकों के कुन्दों का जंगल।
प्रतिबिम्बित होते हैं इस्पात की नलियों की चमक में
पत्तों की तरह
चक्कर काटते गिद्धों के डैने,
गोलियों की झंझा से दोलित होकर
प्रति क्षण झरती हैं
ताजे रक्त की घुंघचियाँ,
स्वेद से सने चेहरों की
काली पीली सफेद मिट्टी पर
उभर आये हैं
उस अदृश्य भय पशु के
भारी भरकम नाखूनी पंजे
जो अभी अभी लाशों को सूंघता हुआ
घुस गया है
किनारे पर की नन्हीं सी बस्ती में।

सयम पालन की शपथ लेने के लिये भी
संयोजित किये जाते हैं आयोजन ।
माइको पर से उद्घोषित किया जाता है
दिनांक, समय, स्थान का विज्ञापन ।
विशिष्टता के बोध से पीडित लोगों को
भेजे जाते हैं सुनहले अक्षरो में छपे निमन्त्रण ।
रिकार्डों की सस्ती धुनो के चुम्बक से
खींच लिये जाते हैं बेचारे साधारण जन ।
फिर इस अपेक्षित भीड का
करने के लिये नियन्त्रण
बुलाई जाती है पुलिस, फौज, पलटन ।

बेचारे सत्य
चिरन्तन होते हैं।
अपने इस होने के लिये
सिर धुन धुन कर रोते हैं
और सोचते हैं कि
काश ! हम भी
उन सपनों की तरह होते
जो नींद में जागते हैं
और जागते में सोते हैं,
जो इस थका देने वाले
चिरत्व के शाप को
अमरत्व के पाप को
बातो ही बातो में
यों उड़ा देते हैं
जैसे उड़ते हाथों के तोते हैं।

बेचारे सत्य
चिरन्तन होते हैं
इस होने के बोझ को
उस मजदूर की तरह ढोते हैं
जो थक जाने पर भी
चलने के लिये लाचार है
क्योंकि मजदूरी
किसी विशेष स्थिति तक
पहुँचने का करार है
जिस पर पहुँचे बिना
सारा श्रम बेकार है,
बस यही हाल उन सत्यों का है,
चिरत्व के भूत्यों का है,
चाह कर भी
किसी किनारे नहीं लग पाते
खाते ही रहते गोते हैं
बेचारे सत्य
चिरन्तन होते हैं।

घटनाओ की फूहड़ धोबिन ने
प्रतिकूलता के अनगढ
खुरदरे पाषाणो पर
पीट पीट कर जीवन की कमीज,
तोड डाले हैं एक एक कर
विश्वास के सारे बटन।
अब विवशता के गदराये यौवन को
संशय की हथेलियो से ढाँपने के सिवाय
चारा ही क्या है?

सार की तरह
स्याही टपकाने वाले
फूहड़ फाउन्टेन पेन,
झूठे आदमी की शपथ सी
बार-बार टूटने वाली कच्ची पेंसिलें,
अक्षरों को पसीना, पसीना
कर देने वाले सड़े गले कागज,
ये सब इनाम में दिये गये
कक्षा में प्रथम आने वाले
मेधावी छात्र को।
दर्शकों ने तालियाँ पीटीं,
सहपाठियों ने बधाई दी,
बालक ने गौरव अनुभव किया,
प्रदर्शन सफल !
उपयोग सिर धुनता रहा।

कन्धो पर लादे
समस्याओ की गठरियाँ
साथ में घसीटते
तर्क की मिमियाती बकरियाँ
अपनी धुन में
उधेड़बुन में
मन की पगडण्डी पर
चले जा रहे
कभी खतम न होने वाले विचार ।
पता नहीं कहाँ
इन खानाबदोशो की मंजिल ?
खींचे ले जा रहा
किन चरागाहो का आकर्षण ?

केवल आदमी ही
कर सकता है अपराध
आत्म-हत्या करने का
क्योंकि
उसने की है धृष्टता बनाने की
स्वभाव के विरुद्ध सिद्धान्त !

केवल आदमी ही
भर सकता है दंभ
भविष्य वाणी करने का
क्योंकि
उसके पास है सूझबूझ
वर्तमान को धोखा देने की !

केवल आदमी ही
कह सकता है आवरण को तहज़ीब
क्योंकि
उसीकी बपौती है
दूसरों को उघार कर देखने की !

पीटते रहो कनस्तर ।
पके धान पर
ठहर नहीं जाय कहीं
चिडियों के चचल पर !

खोले रहो ट्रांजिस्टर ।
कच्चे कान पर
रुके बिना जाय नहीं
कहीं कोई ताजा खबर ।

जो पके
झूठे ही लटके ।
झरें तो
डाल खुले,
कोई नया
फूल खिले,
फल निकले
काहे को झटके ?
चू लें टटके ।

ठहर जाय जो नीर
वही तो सर है,
जो जल चिर श्रम-शील
वही निर्झर है।

यहाँ तत्त्व है गौण
क्रिया का अनुयायी सम्बोधन,
लोचन के दर्शन में चलता
वाणी का संशोधन !

दुख चिर सहचर है
इस से विलग हो जाऊँ तो
जीना दूभर हो जाय ।

सुख सफर में मिला साथी है
इसके साथ ही लगा रहूँ
तो मंजिल भटक जाय ।

बढती उम्र
आँखों को रोशनी में
कटौती कर रही है
यह जानते हुए भी
बार बार बचारी ऐनक को ही मांजता हूँ !

स्थूल समस्याएँ
सूक्ष्म विचारो को
उलझाये हुए ह
यह जानते हुए भी
बार बार गरीब बालो को ही कघी करता हूँ !!

नोच नोच
अपने ही पख
हो गया खग
जब निपट अपख
तो हुआ बोध
शून्य की
सत्ता का
आज तक जिसे
नहीं पाया था जान
सिर्फ
भरता रहा उडान ।

उखाड़ो
गड़े हुये खेमे
कूच करो
बजे तुरही
पड़े नगारे पर चोट।
चिन्तन नहीं
शोषक सामन्त
जो बना कर रहे
महल किले कोट।
चिन्तन नहीं
पोतड़ो का अमीर
जो खाये केवल
बादाम पिश्ता अखरोट।
चिन्तन नहीं
अवसरवादी नेता
जो मांगता फिरे
जिस किस तरह से वोट।

चिन्तन तो है
गाडिया लुहार
घूमता है
देश देशान्तर
बनाता है नित नये औजार।
चिन्तन तो है
श्रमशील मजदूर
तोड़ता है
पथ के पाषाण,
काटता है अगम गहरे कान्तार।
चिन्तन तो है
चिर तरुण विद्रोही
फिरता है
हथेली में लिये सिर
करता है आत्मघाती मान्यताओं पर प्रहार!

मैं जीवन भर
श्रम कर
एक चित्र बनाता हूँ
जिससे
तुम उसे
क्षण भर
देख कर
कह उठो
वाह, कितना सुन्दर है !

मैं जीवन भर
जप कर
एक मंत्र साधता हूँ
जिससे
तुम उसे
क्षण भर
सुन कर
कह उठो
वाह, कितना शिव है !!

मैं जीवन भर
तप कर
एक तत्त्व खोजता हूँ
जिससे
तुम उसे
क्षण भर
जान कर
कह उठो
वाह, कितना सत्य है !!!

बेचारा समय क्या करे ?
सब परिवार बीमार है,
बडी लडकी सुबह् को सफेद कोढ़
मँझली दुपहर को पीलिया
छुटकी सांझ को काला ज्वर,
गरीब समय जिये या मरे ?
बडे लडके सूरज को ब्लड प्रशर,
छुटका चांद यक्ष्मा का मरीज,
पोत सितारे
नाको में दम है इनके मारे
लाचार समय क्या करे
बचारा जिय या मरे ?

कर दिया है
ज्ञान को
दुर्बल, संशयग्रस्त,
अनुभव की तपेदिक ने ।
कम हो गये हैं
रक्त में
सहज अनुभूति के कण,
मरघट से लगते हैं
विस्मयहीन नयन ।
विस्मृत हो गया है
सृजन का उत्स
स्वाभाविक उत्तेजन ।
अब तो केवल
तर्क के पथ्य पर ही
अवलम्बित है
कुंठाओं की
अष्टवक्री देह ।
अस्वीकार चुका है
उन सब सत्यों को
जो हैं विदेह ।
स्वयं को समझने की प्रक्रिया में
पकड़ लिया है
अन्य को झुठलाने का रास्ता
स्वरति में ही
रह गई है
सिमट कर
आत्मघाती आस्था ।

संशय-शमी पर
टाँग कर आस्था-गाडीव
आज बन गया वृहन्नला
तुम्हारा कायर मन,
दुहरायेगा क्या समय भी अपने को ?
दब चुके हैं इतिहास के मलबे के तले
वे भोग-क्लान्त राजपुत्र
जिन्हें विदूषकता से रिझा कर
बिताया करते थे तुम
अपनी आत्म-प्रवचना का काल,
नहीं रहे हैं वे
शोषणजीवी राजकुल
जिनका नमक चुकाने के-
विकृत संस्कार के बहाने
त्यागना पड़े तुम्हें अपना कर्त्तव्य ?
द्वापर की अभिनय पद्धति के लिये
नहीं है उपयुक्त, रंच मात्र भी
कलियुग का रंगमंच।
कहाँ है इतना अतिरिक्त धैर्य और समय
स्वेद अश्रु रक्त से लथपथ
कर्मरत जीवन के पास
जो देख सके
इतने अवांछित अंकों में
तुम्हारी व्यक्तिगत कुण्ठाओं का नाटक ?
अब तो यवनिका उठने के क्षण से
पटाक्षेप तक
सिर्फ पार्थ बने रह कर ही
सिद्ध कर सकते हो
अपने को लोकप्रिय पात्र।

समाज ने
मुझे एक फ्रेम दिया
और कहा
अपने व्यक्तित्व को
इसमें फिट कर दो
तुम्हें भी
दीर्घा में टंगे चित्रों के बीच
एक महत्वपूर्ण स्थान
दे दिया जायेगा।
संकोच वश
मैं इन्कार नहीं कर सका
अशिष्टता के
अपराध से बचने के लिये
अपने को
उस फ्रेम की साईज का
बनाने में जुट गया।
अपना सिर
चौखटे में दे कर देखा
विचारों की
निर्मम काट-छांट किये बिना
सिर समाना मुश्किल था,
अपना हृदय
घेरे में अंटाने की कोशिश की
विश्वासों को खण्डित किये बिना
हृदय अंटना मुश्किल था,
आखिर हार कर
इस नतीजे पर पहुँचा
इस जोड़ तोड़ की अपेक्षा
यह अधिक सहज है
पहले मैं
आत्महत्या कर लूं
फिर
लोग ही मुझे उस फ्रेम में मढ़ ले।

हर एक दुश्चरित्र
तुम्हारी कहानी का
अच्छा चरित्र बन सकता है !

हर एक बेवकूफ
तुम्हारे नाटक का
सफल विदूषक बन सकता है !!

उपयुक्त उपयोग ही कला है;
सर्वोत्तम खाद वही है
जो सड़ा है, गला है !!!

गोरी ठिगनी औरत आग का
काला–कलूटा, लम्ब-तडग, बदचलन मर्द धुआँ
जवानी की पूरी मस्ती में
घुंघराले बालो को लहराता
रास्ते में पडने वाले ऊँचे झरोखो में
ताक झांक करता
जब पौ फटते ही अपने घर-चूल्हे से
आसमानी लॉन पर चहल कदमी करने के लिये निकलता है
तो उसकी माँ पाकशाला के छोटे बच्चे बरतन
कच्ची नींद में से जाग कर
इस तरह झल्लाते है कि
बगल में ही मेरी आँख सराय में ठहरे
परदेशी सपने झिझक कर उठ बैठते है
और हडबडी में पुतली-पलग पर बिछे
अपने स्मृति-बिछौने को वहीं छोड
भाग छूटते हैं।

विरासतें

हमारी गुजरी पीढ़ियों के
कन्धों पर चढ़ कर ही
हम तक पहुँची हैं,
इनमें से यदि कुछ बहुत ऊँची हैं
तो कुछ निहायत ही टुच्ची हैं।
हम अपने कन्धे
इन सब को अगली पीढ़ी तक पहुँचने के लिये
उधार देंगे या नहीं
इसका निर्णय हमें ही करना है
वरना हमारी गफलत से
हमारे नहीं चाहते हुए भी
ये सब यों की यों ही
हम पर सवार हो कर
आगे की मंजिल के लिये कूच न बोल दें ?
अन्यथा आने वाली पीढ़ी
हमें सनकी समझ हँसेगी
और कहेगी
हमारे बड़े भले पुरखे
अपने विचारों को कभी
काम का बाना नहीं पहनने देते थे
और बेचारे कामों को कभी
विचारों का नमूना नहीं बनते देते थे।

घटक रंगों वाले
सोफा सेटो के कॉर्नर पिसेज पर धरे
केक्टस के गमले
फर्डी पालिस से चमकते
शो केसेज में सजे भडकीले खिलौने
तिकोनी मेजो पर खडी
नग्न पुरुषो की प्रतिमाएं
दीवारो पर चस्पां
मृत मृगियो के निरीह मुख
फ्रेमो में मँढी
एब्सट्रेक्ट आर्ट के नाम पर
उल्टी सीधी लकीरें
एसट्रे में रखी
अधजली सिगरेट का टुकडा
रॉक एन रोल की ट्यूनिग पर
थिरकते पॉव
यह है आधुनिक ड्राईंगरूम
अर्थात जिप्सियो का डेरा।

ये तारे
आसमान के सूचना पट पर
अन्धेरे के हाथ से लिखी गई
सूरज की अनगिन आत्महत्याओं की
मनहूस तारीखें हैं,
आज की होने वाली शाम को
इन बेशुमार तारीखों के साथ
देखे अनदेखे ही
एक और नई तारीख जुड़ जाएगी।
क्या कोई गणितज्ञ बतला सकता है
वह कौन सा दिन होगा
जब सूरज
आत्महत्याओं की निरर्थकताओं को समझ लेगा?
सचमुच कभी ऐसा हुआ तो
उन असंख्य तृषित दीपों का क्या होगा
जिन के लिये सूरज की आत्महत्या का क्षण ही
स्नेह पान का क्षण है!

काश ! हम खाली कर सकते
अपनी धमनियों में से
परम्परा से चले आते
कसैले बोदे रुधिर को
अन्तिम बूंद तक ।
विमुक्त कर सकते
अपने हृदय की
रुग्ण करुणा को
मदगत प्रतिशोधों के
सुनियोजित चक्रव्यूहों में से
तोड़ ....तो हम
सिरज सकते
एक ऐसे अनाम को
जो सहज ही उठा लेता
थकी हारी मनुष्यता के
क्षत विक्षत हाथों से गिरी
स्नेह की शाश्वत मशाल !

गुम्बज की नाक के नीचे फैला
चौकोर आंगन,
आंगन के हाथ से फैले
अंधेरे गलियारे,
गलियारों की मुट्ठियों से
विजडित फाटक,
इस पाषाणी सृष्टि की
चेतना का प्रतीक एक प्रहरी
जिसकी आवाज को
दुहराने के लिये
गुम्बज विवश है।

अन्धड़ से प्रताड़ित
बालू के टीले
    सुस्ता रहे हैं
सड़क पर टिका कर
अपना सुनहरा थूथन ।
    गाड़ियों के टायरों ने
उभार कर चकत्ते
सरिसृप समुदाय में
कर दी है वृद्धि
एक और विचित्र जन्तु की,
सड़क पर फैला तारकोल
इन भूरे मगरमच्छों के
मुँह से स्रवित लहू है
गाढ़ा और काला !

अब हुई है चिन्ता
तन्वंगी अनुभूति को
अपनी गिरती हुई सेहत की।
छोड़कर तुक की तंग कोठरी
आ गई है गद्य के हवा महल में।
करने लगी है परहेज
सड़े गले शब्दों के फलों से,
नहीं खाती है भूल कर भी
प्रतीकों के बासी समोसे,
बिम्बों को बाजारू चाट
लेने लगी है सहजता का सुमधुर टॉनिक,
लौट आई है पुनः
भावनाओं के निस्तेज कपोलों पर हल्की सी लाली,
स्फुटित होने लगे हैं
अभिव्यक्तियों के गुठित वक्षोज
रोज ब रोज
आ रहा है एक अनूठा निखार
दूर से ही घूरते हैं बस थोदे विचार
अपनी आदत से लाचार
कभी कभार
कस देते हैं फिकरे दो चार।

दावात में स्याही की तरह
आकाश और धरती के बीच में
भर गया है गाढ़ा अन्धेरा ।
अनगिन किरण-करों से
भावुक चाँद डुबा कर
अनगिन नखत-निब
लिख रहा है
क्षितिज के पन्ने पर
सुनहले सूरज का चन्दनिया गीत
जो उस ने अभी-अभी
पश्चिम से आने वाली
जवान हवाओं से सुना है ।

लील गई सब
लहरें, मछलियां,
सिंघाड़े, शतदल ।
शेष रहा केवल
चिटखा हिय-तल,
चुक गया झील का
कला बोध
थामो कुदाली
रख दो सरोद ।